RESEARCH REVIEW JOURNALS
Volume-05
Issue-07
July-2020

ISSN: 2455-3085 (Online)
RESEARCH REVIEW International Journal of Multidisciplinary
www.rrjournals.com[Peer Reviewed Journal]
DOI:https://doi.org/10.31305/rrijm.2020.v05.i07.038

गुप्तोत्तर काल में दासों की स्थिति

डा0 श्रीकान्त सुमन

पी0 एच0 डी0 (इतिहास) बी0 एन0 एम0 यू0 मधेपुरा (बिहार)

गुप्तोत्तर काल में दास के रूप में काम करने वालों की स्थिति कहीं से भी अच्छी नहीं थी। सामाजिक हैसियत में कर्मकारों का स्थान सबसे नीचे था। एक दास कहता है ''मेरे प्रभु, त्योहार के दिन धनी लागों के लिए है। मुझे तो कल के लिए खुद्दी भी नहीं है। त्योहार से मुझे क्या मतलब कृपा करके मुझे बैल दिया जाय ताकि जाकर खेत जोतूं।'' इससे स्पष्ट होता है कि दास को एक दिन के लिए भी छुट्टी नहीं थी, वे अनवरत रूप से काम करते थे। काम के हिसाब से मजदूरी भी नहीं मिलती थी दूसरी ओर उपज का अधिकतम हिस्सा राजा के अधिकारियों सामंतों और महाजनों के हाथ में चला जाता था। उचित पारिश्रमिक के विचार में निर्वाह–व्यय को कोई पहलू नहीं समझा जाता था। जिस स्वतंत्र व्यक्ति को अपना खेत न होता था और औजार भी नहीं रहता था, उसे स्वतंत्र जीविका नसीब न होती थी। शूद्र श्रमिको की सामाजिक स्थिति सबसे दयनीय थो।

गुप्तोत्तर कालीन अर्थव्यवस्था पर सरकार का एकाधिकार था लेकिन विभिन्न खानों का अध्यक्ष ऊँचे वर्ग के लोग होते थे जिसमें दास वर्ग के प्रति स्वाभाविक विद्वेष की भावना छिपी रहती थी। सम्पत्ति पैदा करने वाले दास वर्ग जैसे– कर्मकार, मजदूर और कृषक सर्वाधिक शोषित और दलित थे। समाज में उनकी संख्या सर्वाधिक थी। ये दुःख में जन्म लेते थे और दुःख में ही मरते थे। असमान वितरण का अभिशाप बड़ा ही तीखा महसूस किया जाता था। बराह मिहिर ने मजदूरों, स्त्री एवं दास वर्ग के आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिए व्यापारियों और मुनाफाखोरों पर अंकुश लगाया लेकिन वह अधिकारियों के अत्याचार पर हल्का आवरण मात्र सिद्ध हुई। बराह मिहिर ने वेतनमान में जो आपेक्षिक अन्तर है– 48000–60 वह इस बात का प्रमाण है कि अमीर व गरीब के बीच खाई बहुत विशाल थी। आर्थिक विपन्नता के कारण ही गुप्तोत्तर साम्राज्य और गणिकाओं और रूपाजीवाओं का अस्तित्व था। राजपुरूष रूपाजीवाओं पर अपना अनाधिकार जमाने की चेष्टा करता था। राज्य की सेवा में जो गणिकाऐं होती थी उनकी स्थिति प्रायः दासियों के सदृश हुआ करती थी। उन्हे जीवन पर्यन्त राज्य की सेवा में ही रहना पड़ता था।

दास वर्ग की आर्थिक स्थिति ऐसी थी कि बिना कर्ज लिए कोई मांगलिक या अन्य कार्य संभव ही नहीं था। महाजनी कारोवार पर राज्य का नियंत्रण था। राज्य द्वारा निर्धारित सूद की दरें बहुत अधिक थी। बराह मिहिर की सम्मति में एक सौ पण उधार देने पर 15 प्रतिशत वार्षिक सूद लेना धर्म था। पर व्यवहार में इससे बहुत अधिक सूद लिया जाता था।

गुप्तोत्तर कालीन समाज में स्त्री एवं दास वर्ग की आर्थिक स्थिति पर निम्न विचार प्रासंगिक प्रतीत होता है ''बराह मिहिर ने शूद्रों को मुख्य कृषिजीवक समुदाय कहा है और वे दास यानी गुलाम नहीं थे। शूद्र श्रमिक–वर्ग के प्रमुख भाग थे, दासों का उपयोग उत्पादन के कार्यो में खासकर कृषि और खान के कामों में किया जाता था। वैश्य के अनुसार प्राचीन भारत में दासों के साथ बरताव में जो मानवीय संस्पर्श है, खासकर बराह मिहिर के शास्त्र में शायद किसी भी प्राचीन सभ्यता के इतिहास में अश्रुतपूर्वक है।''

निचले स्तर के श्रमिकों को खासकर शूद्रों के विशाल वर्ग का शोषण होता था। रतिभानू सिंह नाहर के अनुसार गुप्तोत्तर काल में भारतवासियों का आर्थिक जीवन काफी विकसित एवं सुव्यवस्थित था। किन्तु ऐसा उच्च वर्णो के लिए ही था दास वर्ग के लिए नहीं। दास वर्ग की आर्थिक दशा में विकास हुआ होता तो आज दास वर्ग के इतिहास की पुनरावृत्ति न होती।

बराहमिहिर के शास्त्र में स्त्री एवं दास वर्ग की आर्थिक स्थिति दयनीय थी। दास वर्ग को विभिन्न कारखाने और खेती में मजदूर के रूप में खटना पड़ता था न कि कुशल शिल्पी के रूप में फलतः उनकी मजदूरी कम थी। अनेक प्रकार के दण्ड का विधान था। काम खराब होने पर आर्थिक दण्ड दिया जाता था। यदि दास वर्ग की आर्थिक स्थिति मजबूत रहती तो महिलाएँ रूपजीवाओं एवं गणिकाएँ नहीं बनती, नट, नर्त्तक, गायक, सैनिक तथा चारण आदि को अन्यत्र नहीं भटकना पड़ता।

भारतीय संस्कृति आदि काल से ही धर्मप्रधान रही हैं आर्यो के अभ्युदय के पूर्व जो धार्मिक तथा

RRIJM 2015, All Rights Reserved

सामाजिक प्रधान देश के विभिन्न सम्प्रदायों में प्रचलित थी, उनमें समुचित परिवर्तन कर वैदिक आर्यों ने उनका नवीकरण कर दिया और विभिन्न धार्मिक आचार–विचारों का समन्वय करके उन्होंने अनेकता में एकता की स्थापना की परन्तु उत्तर वैदिक काल में जनता वैदिक संस्कृति से दूर होने लगी। धर्म के व्यवहार पक्ष में जटिलता आने लगी और वैदिक संस्कृति तथा पुरोहित समुदाय के धार्मिक अनुष्ठान जनता के लिए दुर्बोध हो गये। गुप्तोत्तर काल में इसी दुर्बोध की भावना से धार्मिक सम्प्रदाय का प्रचलन हुआ। इस समय के प्रचलित धर्मों में ब्राह्मण धर्म, आजीवक, लोकधर्म, जैनधर्म, बौद्धधर्म आदि प्रमुख थे। बराह मिहिर त्रयी धर्म के अनुयायी थे। उसके अनुसरण में ही राजा और प्रजा का हित मानते थे। लेकिन बराह मिहिर का यह त्रयी धर्म जन सामान्य के लिए नहीं अपितु कुछ खास उच्च वणों के लिए बपौती हो गया। कारण वैदिक यज्ञों का अनुष्ठान करने की आकांक्षा रखने वाले राजकुमार के लिए चौलकर्म, उपनयन आदि वैदिक संस्कार का विधान था अन्य वर्णों के लिए नहीं। यज्ञ का अधिष्ठाता केवल ब्राह्मण ही होता था। शूद्रों का यज्ञ करने और कराने का कोई अधिकार नहीं था। दण्ड स्वरूप उसके कान में शीशा को पिघला कर डालने का विधान भी था। यज्ञ कराने वाल ऋत्विक ब्राह्मण होते थे जो बड़े धनाढ़य होते थे और यज्ञों का अनुष्ठान कराने की क्षमता रखते थे तथा समाज में सम्मान पाते थे। राजाओं, सामंतो और सम्पन्न ब्राह्मण का विश्वास वेदों के कर्मकांड में ही अधिक था परन्तु दूसरी ओर समाज के उपेक्षित वर्ग बाह्य आडम्बर से दूर यथार्थ को जानना चाहते थे।

प्राचीन वैदिक धर्म में न मंदिरो के लिए कोई स्थान था और न उसमें प्रतिष्ठापित मूर्तियों या प्रतिमाओं का। पर गुप्तोत्तर युग के वैदिक धर्म में मूर्तिपूजा महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर चुकी थी और विविध देवी–देवताओं की मूर्तियों को मंदिरों में प्रतिष्ठापित कर पुष्प नैवेध आदि से उनकी पूजा की जानी शुरू हो गयी थी। मंदिरों की सम्पत्ति की देखभाल करने और उनकी सुव्यवस्था के लिए राज्य की ओर से अमात्य की नियुक्ति की जाती थी, जो मूलतः ब्राह्मण ही होते थे। मंदिरो मे विशाल कर्मचारी वर्ग रहता था जिसमें लिपिक, शिल्पी, गायक, वादक, नर्तकी, नाई, चाकर आदि शामिल रहते थे। बड़े–बड़े मंदिरों के पास बड़ी–बड़ी जमींदारियां और अपार सम्पत्ति थी। इन मंदिरों पर पूजारियों का स्वामित्व बढ़ता गया और गांवों की जमीन का काफी हिस्सा पुरोहितो, पूजारियों, मंदिरों और मठों के हाथ में चला गया। महाधिकारी भूमि की खरीद–बिक्री भी करते थे। मंदिर के अधिकारियों की मांग के अनुसार शासक अधिकारी नाजायज करों की भी उगाही होने देते थे। महाअधिकारीयों और राज्याधिकारियों के बीच अच्छा गठबन्धन था। बराह मिहिर ने वर्णक्रम–धर्म को महत्व दिया है जो मौलिक स्वभावों व रूचियों के अनुसार वर्ण–भेद पर आधारित सामाजिक व्यवस्था का समर्थन करता है।

उपरोक्त तथ्यों से स्पष्ट होता है कि धार्मिक अनुष्ठान जिसे पवित्र और आत्म शुद्धि का एक प्रबल साधन माना गया है, ऐसे साधन में भी बराह मिहिर की नीति दोहरी ही रही है, स्त्री एवं दास वर्ग न मंदिर में प्रवेश पाते थे न इसके अधिकारी, न यज्ञ करते थे और न कराने का अधिकारी ही फलतः उनमें असंतोष की भावना का परिणाम गुप्तोत्तर काल मे विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायो का उदय माना जा सकता है।

उपेक्षित, प्रताड़ित, विपन्न तथा दासत्व की भावना से ग्रसित वर्ग को स्त्री एवं दास वर्ग की संज्ञा दी गयी। गुप्तोत्तर काल में दास प्रथा का और अधिक विस्तार हुआ। पहले की अपेक्षा इस युग में एक विशेष परिवर्तन यह हुआ कि अभिजात वर्ग द्वारा अधिकतर दासों को कृषि कार्य में लगाने लगे। दास–दासी खेती कर अपने स्वामी की सेवा करते थे। जैन ग्रंथों से ज्ञात होता है कि तमाम दासियाँ आदिम जातियों से थी। उन्हें पीटने और बाँधने में संकोच नहीं होता था। वे सम्पत्ति की एक इकाई माने जाते थे। उन्हें सामूहिक स्वामित्व में रखे जाते और बाँटे जा सकते थे।

दासत्व के वृद्धि के कारणों में निर्धनता और आर्थिक शोषण था। सूखा, आकाल, बाढ़ आदि से फसलें नष्ट हो जाती थीं और भुखमरी की स्थिति उत्पन्न हो जाती थी। इस स्थिति में भोजन के लिए निर्धन दासत्व स्वीकार कर जीवनपर्यंत स्वामी की सेवा करते थे। लेखपद्धति में एक क्षुधापीड़ित बालिका द्वारा व्यापारी के यहाँ दास–वृत्ति ग्रहण करने का उल्लेख है। अकाल की स्थिति में लोग ऋण ग्रस्त हो जाते। महाजन ब्याज बढ़ाकर उन्हें बोझिल कर देते। ऐसे में उनके जमीन, गहने, मकान, मवेशी आदि सभी बिक जाते। ऐसी स्थिति में दासत्व के अलावा कोई विकल्प नहीं था। राजतरंगिणी के अनुसार परिस्थिति वश व्यक्ति कभी–कभी स्वयं को भी बेच देता था। कथासरित्सागर में ऐसे लोगों का वर्णन है जो जुए में स्वयं को दाँव पर लगा देते ओर पराजित हो जाने पर दासता स्वीकार कर लेते थे। डॉ घोषाल ऋग्वेद तथा वृहदारण्यक उपनिषद का उद्धरण प्रस्तुत कर ऋण न चुका सकने वालों के स्वेच्छा से दासत्व स्वीकार करने की बात कहते हैं।

दासत्व ग्रहण करने वाले पुरूष या स्त्री को विश्वासपात्र बने रहने, चोरी न करने आर पलायन न करने आदि की शपथ दिलाई जाती थी, जिसमें उसके समस्त सर्वस्व का बलिदान होता था। और इस प्रकार

RRIJM 2015, All Rights Reserved

एक बार जो दास बन जाता था वह पीढ़ी दर पीढ़ी स्वामी और उसके वंशजो की सेवा मे लगा रहता था। महाभारत में सात प्रकार के दास का वर्णन हुआ है। बौद्ध पालि साहित्य और जातकों में कुल दस प्रकार के दासों का वर्णन है। कौटिल्य ने यह संख्याँ आठ बताया है जो गृहजात (घर में पैदा), दायागत (दान में प्राप्त), क्रीत (खरीदा हुआ), ध्वजाहृत (युद्ध बन्दी), आत्म विक्रयी (स्वच्छा से बना), आहितक (ऋण के बदले) और दण्ड प्रणीण (दण्ड स्वरूप बना दास) कहे गये हैं। क्रीत दास के विषय में जैन ग्रंथों से ज्ञात होता है कि दासों का व्यापार होता था। अनेक मंदिरों के अधिकारी देवताओं की सेवा के लिए धन देकर दास खरीदते थे। प्रबन्ध चिन्तामणि में खरीदकर दासों को विदेशों में भेजा जाता था। लेखपद्धति से भी इसका समर्थन हुआ जिसमें अन्य वस्तुओं की तरह दासों के निर्यात का उल्लेख मिलता है। ऋण न चुकाने वाले तथा स्वविक्रयी दासों का बाहुल्य था। आत्मविक्रयी किसी भी वर्ण जाति के निर्धन हो सकते थे। लेखपद्धति में एक निर्धन राजपूत कन्या द्वारा वैश्य से दासी बना लेने की प्रार्थना का उल्लेख मिलता है। कथासरित्सागर में सोमदेव ने चार व्यापारियों के दास बनने का उल्लेख किया है जो बाद में धन देकर स्वतंत्र हो गये। प्रतीत होता है कि शूद्र के अतिरिक्त क्षत्रिय और वैश्य भी विशेष परिस्थितियों में दास बन जाते थे। किन्त ब्राह्मण दास का उल्लेख नहीं मिलते हैं। ध्वजाहृत दासों में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र का भेद नहीं रहा होगा। जब मुसलमानों ने गुजरात विजय कर बीस हजार भारतीयों को दास बनाया और कालिंजर विजय कर पचास हजार को दास बनाया तो इसमें सभी वर्गों के लोग रह होंगे। किन्तु स्थानीय सामन्तों द्वारा युद्ध बन्दियों में दास–दासियों में ब्राह्मण नहीं रहे होंगे।

दास और दासियों को स्वामी के हर कार्य को करने पड़ते थे। इस युग में अभिजात वर्ग द्वारा अपनी भूमि पर दासों से कृषि कार्य करवाते थे। लेखपद्धति में दासियों द्वारा घरेलु कार्यों को करने का उल्लेख हुआ है साथ ही वे कृषि कार्य में दासों की सहायता करती थी। दासियां बुआई, कटाई, मड़ाई, चारा काटना, पशुओं को खिलाने आदि कार्यों मे सहयोग करती थीं। इसके अतिरिक्त स्वामी के घर की सफाई, पानी तथा ईंधन की व्यवस्था तथा दुग्ध दोहन, दही मंथन आदि इनका कार्य था। राजा और सामन्त की दासियाँ स्वामी के भोग–विलास की व्यवस्था करती थीं। स्वामी के शैय्या की साज–सज्जा, उनके वस्त्र–आभूषण आदि धारण करने मे सहायता, ताम्बूल खिलाना, अतिथि सत्कार, जलाशय से पानी भरने और ढोने आदि दासियों का प्रमुख कार्य था। इन्हें बाजार से आवश्यक धरेलू वस्तुओं को खरीदने का काम भी मिलता था। दासियों का विशाल समूह राजमहल में रहता था। इनमें साहसी और बहादूर दासियाँ अन्तःपुर की रक्षक नियुक्त होती थीं। मानसार में एक राजा द्वारा अपनी दासियों में से पाँच सौ परिचारिकाएँ चुनने का उल्लेख है। राजतरंगिणी में राजा जालौर द्वारा अन्तःपुर की सौ दासियों को नृत्य करने का आदेश वर्णित है। इन दासियों का शोषण भी होता था। सुन्दर दासियाँ रखैल भी बन जाती थीं। इन्हें सौभाग्यशाली मानो जाती थीं क्योंकि इन्हें स्वामी की पत्नियों की तरह सुख–सुविधायें प्राप्त होती थीं। मेधातिथि के अनुसार इन्हें अच्छा भोजन वस्त्र के साथ आभूषण उपहार में मिलते थे। इन्हें अन्य दास–दासियों द्वारा ईर्ष्या–द्वेष की दृष्टि से देखी जाती थी। इनके कारण प्रायः स्वामो का दाम्पत्य जीवन संकटग्रस्त हो जाता और ऐसी दासियों को अपने प्राणों से भी हाथ धोना पड़ता था। रूपवती दासियों को ईर्ष्यालु स्वामिनियाँ कठोर यातनायें देती थीं। विवेच्य युगीन साहित्य में दास–दासियों के प्रति क्रुर व्यवहार के बहुत विवरण प्राप्त होते हैं। व भूखे–प्यासे रहकर कार्य करते थे मामूली गलती पर भी उन्हे बहुत पीटा जाता था। लेखपद्धति के अनुसार यदि कोई दासी स्वामी के घर कार्य करते हुए अफवाह फैलाती, सामान चुराती या भागने का प्रयत्न करती तो उसे घसीटकर बाँध और पीटकर कार्य करने को बाध्य किया जाता था। दण्ड के दौरान मृत्यु हो जाने पर भी स्वामी दोषी नहीं माना जाता था। कथासरित्सागर में भी दासियों को दण्डित करने का उल्लेख मिलता है। ऐसी प्रताड़नाओं से व्यथित कुछ दासियाँ आत्महत्या कर लेती थीं। व्यवस्थाकारों ने आश्चर्यजनक ढंग से इन प्रताड़नाओं को सहन करने का उपदेश किया। जैसे प्रताड़ित दास–दासी द्वारा आत्महत्या करने पर अगले जन्म में गदहे, कुत्ते, बिल्ली जैसी योनियों में पैदा होने की बात कर प्रताड़ना को सहन करने को प्रेरित किया गया है। जबकि स्वामी के लिए गंगा स्नान का निर्देश है। इस तरह दासियों की स्थिति अत्यन्त खराब थी।

दासों को दासियों से भी अधिक यातनाएं झेलनी पड़ती थी। उन्हें खच्चरों की तरह पीटा जाता। उसी तरह भार लादा जाता तथा भूखा–प्यासा रहने को बाध्य किया जाता था। स्वामी और दासी से उत्पन्न पुत्रों की दशा तो और भी खराब थी। वे न तो पिता की सम्पत्ति में अधिकार पाते और न ही सामाजिक सम्मान। 'दासी पुत्र' शब्द ही निन्दा व्यंजक था। इनके हितों के विषय में प्रावधान न बनाने जैसे अमानवीय सोच से तत्कालीन धर्मशास्त्र ग्रस्त दिखाई देते हैं। कात्यायन और मेधातिथि के अनुसार निर्वहन के लिए दास को मात्र भोजन–वस्त्र की आवश्यकता होती है। जो स्वामी की

RRIJM 2015, All Rights Reserved

क्षमता के अनुकूल होना चाहिए। आश्चर्य है कि इन दासों के कर्त्तव्यों का जितना वर्णन किया गया है, उनके अधिकारों का कोई विवेचन नहीं मिलता है। इतना अवश्य है कि अधिकांश को यदि कठिनाइयाँ उठानी पड़ती तो कुछ को उदारता और करूणाजनित सुविधाएँ भी प्राप्त होती थीं। दास– दासियों के प्रति व्यवहार वस्तुतः उनके स्वामी के स्वभाव पर निर्भर होता था। कुछ कृपालु तथा संवेदनशील सभ्रान्त परिवार में दास–दासी सुख से रहते थे। एक बार दास बन जाने के बाद उससे मुक्ति सहज नहीं था। किन्तु कभी–कभी स्वामी की प्रशन्नता और दया उनके मुक्ति का आधार बन जाती थी। अग्निपुराण और कथासरित्सागर में धन देकर दासत्व से मुक्ति प्राप्ति के उदाहरण मिलते हैं।

संदर्भ–

1. ऋगवेद मंडल–10, सुक्त संख्या–17
2. विधलंकार डॉ सत्यकेतु गुप्तोत्तर कालीन साम्राज्य का इतिहास श्री सरस्वती सदन नई दिल्ली–1980.
3. कृष्णा राव डॉ0 एम0 वी0 बराह मिहिर शास्त्र का सर्वेक्षण अनुवादक
4. चौधरी राधाकृष्ण, प्राचीन भारत का आर्थिक इतिहास जानकी प्रकाशन नई दिल्ली 1986
5. राजतरंगिणी, पृष्ठ–139.
6. कथासरित्सागर, पृष्ठ–255, 401.
7. लेखपद्धति, पृष्ठ–47, 78.
8. कथा सरित्सागर– पृष्ठ–511, 597.
9. शूद्रों का प्राचीन इतिहास– आर. एस. शर्मा, पृष्ठ–128.
10. सोसाइटी एण्ड कल्चर इन नार्दर्न इण्डिया– वी. एन. एस. यादव, पृष्ठ–142.

RRIJM 2015, All Rights Reserved